International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
March-April - 2018, Volume-5, Issue-2 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

चालुक्यवंशीय नरेशों के शासन काल में पल्लवित जैन संस्कृत साहित्य

जयश्री जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर जय अरिहन्त बी0एड0 कॉलेज
हल्द्वानी (नैनीताल)

सार

नर्मदा नदी के दक्षिण में चालुक्य वंश दो शाखाओं में विभक्त हो गया था। जिसमें एक शाखा 'वातापी' के चालुक्यों के नाम से और दूसरी 'कल्याणी' के चालुक्यों के नाम से प्रसिद्व हुई। गुजरात के चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्वराज के आदेश से हेमचन्द्र ने 'सिद्ध हेमचन्द्रानुशासन' नामक व्याकरण ग्रन्थ एवं संस्कृत साहित्य की अनेक रचनाओं को लिखकर संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्हीं हेमचन्द्राचार्य के शिष्यों में कवि राम चन्द्र सूरि सर्वप्रधान थे।[1] इन्होंने नलविलास नाटकम् कौमुदीमित्राणन्द, सत्य हरिश्चन्द्र आदि दस नाटकों की रचना की। गुजरात के चालुक्य वंशी नरेशों ने संस्कृत साहित्य प्राकृत भाषा में विभिन्न कृतियों की रचनाएं प्रकाशित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन राजाओं में जयसिंह प्रमुख थे एवं रचनाकार हेमचन्द्राचार्य एवं उनके शिष्य रामचन्द्र सूरि आदि थे।

मुख्य शब्दः चालुक्यवंशीय , शासन काल

प्रस्तावना –

चालुक्य वंश एक भारतीय शाही राजवंश था जिसने 6वीं और 12वीं शताब्दी के बीच दक्षिणी और मध्य भारत के बड़े हिस्से पर शासन किया। सौराष्ट्र में चालुक्यों के शासन को आभीरों द्वारा समाप्त कर दिया गया था।ख, दसवीं शताब्दी की तीसरी तिमाही। इस अवधि के दौरान, उन्होंने तीन संबंधित अभी तक व्यक्तिगत राजवंशों के रूप में शासन किया। सबसे पहला राजवंश, जिसे ष्बादामी चालुक्यष् के रूप में जाना जाता है, ने 6 वीं शताब्दी के मध्य से वातापी (आधुनिक बादामी) पर शासन किया। बादामी चालुक्यों ने बनवासी के कदंब साम्राज्य के पतन पर अपनी स्वतंत्रता का दावा करना शुरू कर दिया और पुलकेसी द्वितीय के शासनकाल के दौरान तेजी से प्रमुखता से उभरे। पुलकेशी द्वितीय की मृत्यु के बाद, पूर्वी

[1] भोगी लाल ज0 साण्डेसराः हेमचन्द्राचार्य का शिष्य मण्डल, नाट्यदर्पणः एक्रिटिकल स्टडी, पृ0 209–222

चालुक्य पूर्वी दक्कन में एक स्वतंत्र राज्य बन गया। उन्होंने वेंगी से लगभग 11वीं शताब्दी तक शासन किया। पश्चिमी दक्कन में, 8 वीं शताब्दी के मध्य में राष्ट्रकूटों के उदय ने बादामी के चालुक्यों को उनके वंशजों, पश्चिमी चालुक्यों द्वारा 10 वीं शताब्दी के अंत में पुनर्जीवित करने से पहले ग्रहण किया। इन पश्चिमी चालुक्यों ने 12वीं शताब्दी के अंत तक कल्याणी (आधुनिक बसवकल्याण) से शासन किया।

लगभग 11वीं, 12वीं शताब्दी में उत्तरी गुजरात के चालुक्यवंशीय नरेशों के शासन काल में जैन साहित्य की श्रीवृद्धि में कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य एवं उनके शिष्य रामचन्द्र सूरि का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

उद्देश्य

चालुक्यवंशीय नरेशों के शासन काल पर अध्ययन

चालुक्य राजवंश

चालुक्य वंश की उत्पत्ति के विषय में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। कुछ विद्वान उन्हें 'शूलिक' जाति से सम्बन्धित मानते हैं जिसका वर्णन वराहमिहिर की कृति वृहत्संहिता में प्राप्त होता है। परन्तु बिसेंट ए. स्मिथ उन्हें विदेशी मानते हैं तथा उनका सम्बन्ध श्चम्पश जाति से जो कि गुर्जर जाति की ही एक शाखा थी से मानते हैं। नीलकंठ शास्त्री इस वंश का प्रारम्भिक नाम श्चलक्यश मानते हैं।

चालुक्य–वंश की मुख्य शाखा जिसने इस वंश के साम्राज्य की नींव डाली, बादामी अथवा वातापी (बीजापुर जिला) के चालूक्यों की थी। बादामी के चालुक्यों को प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्य भी पुकारा गया है। उनकी एक शाखा वेंगी अथवा पिष्टपुर के पूर्वी चालुक्य थे जिन्होंने 7वीं सदी के प्रारम्भ में अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की परन्तु वे अंत में राष्ट्रकूट शासकों के अधीन हो गये। इनकी एक शाखा कल्याणी के चालुक्य थे जिन्हें बाद में पश्चिमी या पिछले चालुक्य भी पुकारा गया और जिन्होंने 10वीं सदी के उत्तरार्द में राष्ट्रकूट–शासकों से अपने वंश के राज्य को पुनः छीन लिया और एक बार फिर चालुक्यों की कीर्ति को स्थापित किया। ह्वेनसांग के विवरण में पुलकेशियन् द्वितीय को स्पष्टतः क्षत्रिय कहा गया है। अतः उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में चालुक्य शासकों को क्षत्रिय जाति से सम्बन्धित माना जा सकता है।

चालुक्य समाज और संस्कृति रू वतापि (वादामी) के चालुक्यों का शासन प्रायद्वीपीय दक्कन (पश्चिमी दक्षिणापथ) के इतिहास में विशेष महत्वपूर्ण युग माना जाता है। उन्होंने लगभग दो शताब्दियों तक शासन किया। इस दीर्घकालीन अवधि में चालुक्य नृपतियों ने साहित्य, कला तथा धर्म के आदि संवर्द्धन में विशिष्ट योगदान किया। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ के लोगों के स्वभाव में सौम्य और उग्रभाव का समन्वय था। युद्ध और अपकार की स्थिति में उनमें जो क्रूरता और उग्रता थी वह सामान्य स्थिति में नहीं देखने को मिलती थी। सामान्य लोग मुख्यतया खेतिहर किसान शान्तिप्रिय थे। वातापि के चालुक्य नृप भी धार्मिक दृ ष्टि से सद्भाव और समन्वय को मान्यता प्रदान करते थे।

चालुक्य कला–कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में चालुक्यों ने अपना कीर्तिमान स्थापित कर दिया। इनकेसंरक्षण में निर्मित विहार तथा मन्दिर वास्तुकला में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनके शासन काल में स्थापितों ने कई नये प्रयोग किये। विहार शैली पर प्रकृत शैल–उत्कीर्णित गुफा संरचनात्मक मण्डपों का भी निर्माण हुआ और पत्थरों को जोड़कर ैजतनबजनतंस) मंदिर वस्तु की भी परम्परा चली। शैली की दुष्टि से नागर और द्रविड़ दोनों ही तथ्यों के आधार पर अलग–अलग मंदिर भी बने और एक नई शैली. बेसर शैली के अन्तर्गत भी मंदिर निर्मित हुये। प्रभाव की दृष्टि से आरम्भ में गुप्त वास्तु और मूर्ति शिल्प अयहोलि. बादामी और पट्टदिकल के वास्तु और मूर्तिशिल्प का अनुप्रेरक है, किन्तु कालान्तर में जब पल्लवों का राजनीतिक सम्पर्क चालुक्यों से हुआ तो पल्लव मूतिशैली (मामल्ल शैली) का प्रभाव बादामी के मुर्ति की कला बिशेष रूप में परिलक्षित हुआ। विरुपाक्ष मंदिर पर यह प्रभाव सर्वाधिक है।

चालुक्यों संरक्षण में अयहोलि (ऐहोले) वस्तुतः मंदिरों के नगर के रूप में विकसित हुआ, जहाँ और सातवीं शती के बीच लगभग 70 मन्दिरों का निर्माण हुआ। यहाँ के प्रसिद्ध मन्दिरों में लांडखाँ मंदिर, दर्गा मन्दिर, हच्ची मल्लीगुडि मन्दिर, मेगुती मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। चालुक्यों की राजनगरी वातापी या वादामी भी चालुक्य वास्तु का केन्द्र रहा है। यहाँ पर स्थित चार मंदिरों में तीन ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित है और एक जैन। ऐहोल मन्दिर के वास्तु–विधान की तुलना में यहाँ का वास्तु–विधान भिन्न है और प्रकत शैल को उत्कीर्णित करके बनाये गये हैं। यहाँ के चारो मंदिर में वैष्णव मंदिर सबसे प्राचीन (570 ई०) है। जैन मंदिर सबसे बाद का है।

नागर और द्रविड़ शैली का प्रयोगात्मक प्रयास पापनाथ मंदिर में प्रथम हुआ। यदि नागर शैली का शिखर इसमें न होता तो यह सम्पूर्णतया द्रविड़ शैली (मामल्ल शैली) का ही नमूना ठहरता। इस नागर तथा द्रविड़ शैली का मिश्रित रूप हमें विरुपाक्ष मंदिर में मिलता है। विरुपाक्ष करती है, जिन्होंने अपनी कल्पना को अपने हाथों से उसे चरितार्थ किया। इस मंदिर का निर्माण मामल्ल शैली के मन्दिरों की प्रत्यक्ष अनुभूति और प्रेरणा के आधार पर किया गया–और बहत संभव है कि इसके शिल्पी भी पल्लव क्षेत्र से बुलाये गये हैं। बादामी और पट्टदिकल के बीच स्थित महाकटेश्वर मन्दिर नागर शैली के शिखर से युक्त त्रिरथ प्रकार का है। मध्य रथ के समीप के उपमन्दिर पंचरथ का पूर्वाभास प्रकट करते हैं। वर्गाकार विमान के आगे एक मण्डप और उसके बाद अर्द्ध मण्डप इस मंदिर के प्रमुख वास्तु–तत्व हैं। इसी मंदिर के प्राङ्गण में स्थित मल्लिकार्जुन मंदिर इसी आकार प्रकार का है। अन्य चालक्य मंदिरों में वादामी का शिवालय और मल्लिकार्जुन, पदिकल का संगमेश्वर आदि भी भव्य और सुन्दर है। तुंगभद्रा की उपत्यका में आलमपुर (ब्रह्म मन्दिर) भी चालुक्य कालीन वास्तु का प्रतिनिधत्व करते हैं।

हेमचन्द्राचार्य – अपने समय के महान युगस्रष्टा थे। उनके जीवन का लक्ष्य ग्रन्थों का प्रणयन कर अपने आश्रयदाता को रिझाना न था, प्रत्युत धर्म और विद्या का प्रचार – प्रसार करना था। उनका जन्म 1089 ई0 में हुआ था और केवल पाँच वर्ष के वय में 1094 ई0 में वे जैन धर्म में दीक्षित हुए। अणहिलपाटन के चालुक्य वंशी नरेश जयसिंह सिद्धराज के आदेश से इन्होंने 'सिद्धहेमचन्द्रानुशासन' नामक व्याकरण ग्रन्थ का प्रणयन 1139 ई0 में किया। इससे पूर्व ही 1110 ई0 में इक्कीस वर्ष की उम्र में वे सूरि या आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। जयसिंह की मृत्यु के अनन्तर 1144 ई0 में कुमारपाल सिंहासनारूढ़ हुए, और 1152 ई0 में इनको हेमचन्द्र ने जैनधर्म में दीक्षित किया। अपने गुरू के आदेश से राजा ने जैन धर्म के अभ्युदय के लिए अनेक शोभन कार्य किये और अपने राज्य में पशुहिंसा बन्द करा दी। 1173 ई0 में 84 वर्ष की आयु में हेमचन्द्र का देहावसान हुआ। ये वैयाकरण, कवि, योगशास्त्र, दार्शनिक एवं कोषकार थे। इसी कारण वे 'कलिकाल सर्वज्ञ' की महनीय उपाधि से विभूषित किये गये थे।

रचनाएँ – संस्कृत साहित्य की सभी विधाओं में इन्होंने प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनमें मुख्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं –

(1) व्याकरण – सिद्वहैम (या सिद्धहेमानुशासन, स्वोपज्ञवृत्ति के साथ, (2) कोश – हेमनाममाला (अभिधानचिन्तामणि) नाम्नी वृत्ति के साथ,) अनेकार्थसंग्रह, निघण्टुकोश तथा देशीनाममाला (3) छन्द – छन्दोऽनुशासन (4) अलंकार – काव्यानुशासन अलंकार चूड़ामणि व्याख्या के साथ), (5) दर्शन– प्रमाणमीमांसा (जैनन्याय) तथा योगशास्त्र (12 प्रकाशों में 12 सहस्र श्लोंकों में समाप्त) (6) काव्य – कुमारपालचरित तथा 'त्रिषष्टिशलाकापुरूष'।

इनमें 'कुमारपालचरित ही द्वयाश्रय काव्य के नाम से प्रख्यात है। इसका कारण यह है कि इसमें चालुक्य वंशीय नरेशों के जीवन वृत्त के वर्णन के साथ–साथ हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण के उदाहृत शब्दों का यथा विधि प्रयोग भी किया है। हेमचन्द्र का यह काव्य चालुक्यवंशीय राजाओं का विस्तृत इतिहास प्रस्तुत करता है। जिनकी राजधानी अ अणिहिलपाटन थी।

बीस सर्गो के इस महाकाव्य के ऐतिहासिक महत्व का संकेत भलीभाँति मिलता है। गुजरात के चालुक्यवंशीय नरेशों का यह बहुमूल्य प्रामाणित इतिहास है। जैन धर्म के प्रचारार्थ उसके कार्य–कलापों का विशद वर्णन हेमचन्द्र का प्रधान लक्ष्य है।

'त्रिषष्टि –शलाका–पुरूष चरित्र' (परिशिष्ट पर्व के साथ) अर्ध ऐतिहासिक 'महाकाव्य है। जिसमें जैन धर्म के महावीर के पश्चात् कालीन आदर्श 63 महापुरूषों का जीवन चरित निबद्ध किया गया है। यह एक विशालकाय ग्रन्थ है। जैनधर्म में 63 महापुरूष माने जाते हैं जिन्होंने अपने जीवन चरित में धर्म का आदर्श पूर्णतः पालन किया था। इनकी पारिभाषिक संज्ञा है– शलाका पुरूष। इन्हीं का चरित निबद्ध करने वाला यह महान काव्य 'चरित काव्य' की परम्परा में अन्तर्भुक्त माना जाना चाहिए।

2. कवि रामचन्द्र सूरि– कवि रामचन्द्र सूरि हेमचन्द्रचार्य के शिष्यों में सर्वप्रधान थे।[2] ग्रन्थकार के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अधिक नहीं मालूम फिर भी पं0 लालचन्द्र गाँधी ने नलविलास की भूमिका में लिखा है कि रामचन्द्र वि0सं0 1945 में उत्पन्न हुये थे। उन्हें सं0 1166 में 'सूरि' पद मिला था। वे सं0 1228 में हेमचन्द्र के शिष्य हुये। एवं पट्टधर हुये और सं0 1230 में स्वर्गवासी हुये। प्रभावकचरित में हेमचन्द्र का जीवन चरित बतलाते हुये कहा गया है कि रामचन्द्र एक योग्य शिष्य थे जो हेमचन्द्र की परम्परा को चला सकते थे। गुजरात के नाट्यकारों में रामचन्द्र सर्वोच्च थे। उन्होंने नाट्यशास्त्र का पूर्ण अध्ययन किया था।

[2] भोगीलाल ज0 सांडेसरा, हेमचन्द्राचार्य का शिष्य मण्डल, नाट्यदर्णण एक्रिटिकल स्टडी, पृ0 200–222

उनकी एतद् विषयक कृति नाट्य दर्पण एक मौलिक रचना है। इसमें नाटक के प्रकारों, स्वरूप और रसों का ऐसा वर्णन किया गया है जो भरत के नाट्यशास्त्र से भिन्न है। इसमें संस्कृत के कितने ही उपलब्ध और अनुपलब्ध नाटकों के भी उल्लेख हैं जिनमें कुछ तो स्वयं कवि की रचनाएँ है। इस ग्रन्थ में विशाखदत्त के लुप्त नाटक 'देवी चन्द्रगुप्त' के अनेक उदाहरण दिये गये हैं जो गुप्त इतिहास की लुप्त कड़ियाँ संकलित करने में बड़े महत्वपूर्ण प्रमाणित हुए हैं।

उनकी शैली में प्रतिभा और प्रवाह है, वे इस कला में निपुण थे कि साधारण से साधारण कहानी को कैसे सुन्दरतम नाटकीय ढंग से परिवर्तित किया जाय। उन्होंने भावाभिव्यक्ति में पर्याप्त मौलिकता दिखलाई है। इसके अतिरिक्त वे प्रथम श्रेणी के समालोचक कविता के हार्दिक प्रशंसक और तत्काल समस्यापूर्ति करने वाले थे। इन्होंने अनेक आलंकारिक स्तोत्र भी रचे है। रामचन्द्रसूरि चार प्रकार की संस्कृत नाट्य कृतियों के लेखक थे – नाटक, प्रकरण, नाटिका और व्यायोग।

उनके द्वारा पौराणिक एवं काल्पनिक कथा वस्तु पर लिखी कृत्तियाँ मुख्य रूप से दस हैं– [3]

1. सत्य हरिश्चन्द्र
2. नलविलास
3. मल्लिका मकरन्द
4. कोमुदी मित्रानन्द
5. रधुविलास
6. निर्भय भीम व्यायोग
7. रोहिणी मृगांक
8. राधवाभ्युदय
9. यादवाभ्युदय

[3] 'कौमुदीमित्रानन्दरूपकम्' – अनुवादक–श्यामानन्द मिश्र पारूर्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी

10. वनमाला

इसके अतिरिक्त हेमचन्द्रचार्य के अन्यतम शिष्य देवचन्द्र की रचना 'चन्द्रलेखार्विजय' प्रकरण, प्रसिद्ध तार्किक देवसूरि रचित 'प्रबुद्धरौहिणेय', विजयपाल रचित 'द्रोपदी स्वयंवर' मोहराजपराजय मुद्रित कुमुदचन्द्र, धर्माभ्युदय शमामृत, हम्मीरमदमर्दन, करूणवज्रायुध अजनापवनअजय आदि कृत्तियाँ भी इस काल में लिखी गई।

रामचन्द्र सूरि कृत नलविलास नाटकम् का संक्षिप्त परिचय–

नलविलास – इस नाटक में 7 अंक हैं। इसकी कथावस्तु का आधार भी महाभारत ही है। यह जैन साहित्य में प्राप्त नल–कथा पर बिल्कुल आश्रित नहीं है और न इसमें साम्प्रदायिकता की थोड़ी सी गन्ध है।

महाभारत में नलकथा के कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जैसे हंस के द्वारा नल का सन्देश, कलिका नल के शरीर में प्रवेश और पक्षियों द्वारा नल के वस्त्राभूषण ले जाना आदि, जो कि रंगमंच में नहीं दिखाये जा सकते, उन्हें इस नाटक में बदलकर रंगमंच के अनुरूप बनाया गया है। लेखक के ये परिवर्तन मौलिक सुन्दरता में वृद्धि ही करते हैं। प्रत्येक अंक में लेखक की प्रतिभा, उक्ति वैचिन्य झलकता है। इसमें दमयन्ती का चरित्र महाभारत की अपेक्षा अधिक उदात्त हैं, इसमें कई ऐसे संवाद हैं जो पाठकों को द्रवीभूत कर देते हैं। नल और दमयन्ती के बीच वियोग के करूण दृश्य से संवेदनशील पाठक बिना द्रवित हुए नहीं रह सकता। यह उत्तररामचरित की याद दिलाता है।कवि रामचन्द्र में भावव्यक्त करने की शक्ति कालिदास और भवभूति के ही समान है। वे अपने वर्णन और संवादों से लोगों के सम्मुख अनोखे दृश्य खड़े कर देते है। स्वयंवर का दृश्य बड़ा ही प्रभाव पूर्ण है, और हमें रघुवंश के छठे सर्ग की साद दिलाता है।

उपसंहार – जैन विद्वानों ने विभिन्नकालों में लोक भाषाओं के माध्यम से अपनी कृत्तियों की रचना करके इनके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, तमिल, तेलगु आदि में भी जैन साहित्य उपलब्ध है। इस तरह से सम्पूर्ण दक्षिण भारत में जैन साहित्य का उल्लेखनीय योगदान रहा। प्राकृत भाषा को विकसित करने में जैन लेखकों का कार्य सराहनीय रहा है। इनमें पूर्व मध्यकाल में हेमचन्द्राचार्य एवं रामचन्द्रसूरि आदि ने विविधि विषयों पर प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में साहित्य सृजन कर इनका बहुमुखी विकास किया। दक्षिण में कन्नड़ एवं तेलगु में भी इनके साहित्य है। इसके अतिरिक्त कुछ जैन ग्रन्थ संस्कृत में भी मिलते हैं। जिनमें 'कल्पसूत्र' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'परिशिष्टपर्वन' जैन धर्म का

ग्रन्थ है जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जैन साहित्यकारों में हरिभद्र, सिंद्धसेन, पटलिप्त, जयसिंह, नन्दी, पूज्यपाद तथा हेमचन्द्र का नाम उल्लेखनीय है। इन्हीं के पट्टशिष्य रामचन्द्रसूरि ने नलविलास नाटक आदि दस नाटकों की रचना की जो नाट्यशास्त्र की सीमाओं में आबद्ध है।

सन्दर्थ ग्रन्थ सूची

पुस्तक	लेखक	प्रकाषक
1. नलविलास नाटकम्	श्री रामचन्द्रसूरि विरचित	पार्श्वनाथ विद्यापीठवाराणसी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय	शारदा निकेतन वाराणसी
3. ंस्कृत साहित्येतिहासः	आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्रः	चौखम्भ विद्याभवन वाराणसी
4. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास	डॉ0 गुलाबचन्द्र चौधरी	पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी
5. कौमुदी मित्रानन्दरूपकम्	श्यामानन्द मिश्र	पार्श्वनाथ विद्यापीठवाराणसी